का राज नहीं की सजा सुनाई जा चुकी है. चुनाव आयोग का 1997 का आदेश है कि जिस व्यक्ति को किसी अपराधिक मामले में दो वर्ष या

इसका तार्किक आशय यही उभरता है कि स्टालिन की ताजपोशी

आधार पर इस चुनाव में उम्मीदवार नहीं बनाया है. व्ही.एस.

पार्टी का कहीं कोई दांव नहीं लगा है.

धरती का रीतना, धरती का भीगना...

चिलचिलाती धूप से बचने के लिए मुट्ठी भर छांव की ठोर में बैठे पंछी थोड़ी-थोड़ी देर में फड़फड़ाने लगते हैं. प्यास बुझाने के लिए तो उड़ना ही पड़ेगा फिर चाहे आसमान से आग ही क्यों न बरस रही हो! पर..... पानी है कहां? तालाब तो कब से सूख चुके हैं. कुंडियां सूनी हैं. अब यहां रस्सी के पत्थर पर रगड़ने से होने वाली चूंऽऽ और घड़े के कुएं के अंदर पहुंचते ही होने वाली छप्पाकऽऽऽ की आवाजें बीते युग का किस्सा हो चली हैं. भूले से यदि कोई ग्रामीण महिला एक घड़े पानी की तलाश में भटकते-भटकते यहां तक पहुंच जाये तो रीते कुओं की तली देखकर उसकी आंखों में निराशा छा जाती है. आखिर, कहां गया पानी......? धरती निगल गई या आसमान पी गया. फाल्गुन आते-आते कुएं सूख जाते हैं. तालाब की जमीन जगह-जगह से दरककर धरती के प्यासे होने का दर्द सुनाने लगती है.

कभी नीर-क्षीर सी उफनती नदियां अब गरमी के पहले दिन से ही कुम्हला जाती हैं. जिले की सीमा रेखा से सटकर बहते हुए एक किनारे से मालव संस्कृति को सींचती तो दूसरे किनारे से निमाड़ संस्कृति को पोषित करती नर्मदा जरूर अभी चुकी नहीं है. पर नर्मदा के बहने में अब पहले का सा उत्साह भी नहीं है. कालीसिंध सूखकर दोहरी हो गई है, तो क्षिप्रा कहीं-कहीं महज लकीर भर रह गई है. लोधरी तो जैसे सूखी खाई हो! बागदी जैसी स्थानीय व छोटी नदियों के होने का अहसास तो सिर्फ बारिश के मौसम में ही होता है, लेकिन इन नदियों की तलहट में जमे पत्थरों पर पानी के बहने के निशान अभी भी मौजूद हैं. हर पत्थर में छुपी है नदी की यौवनगाथा. यह किस्सा कोई सदियों पहले का नहीं है या दादी-परदादी, नानी-परनानी के पोपले मुंह से निकलने वाली परियों की कहानी जैसा दूसरे लोक का भी नहीं है. ये तो जैसे अभी-अभी कल ही की बात हो.

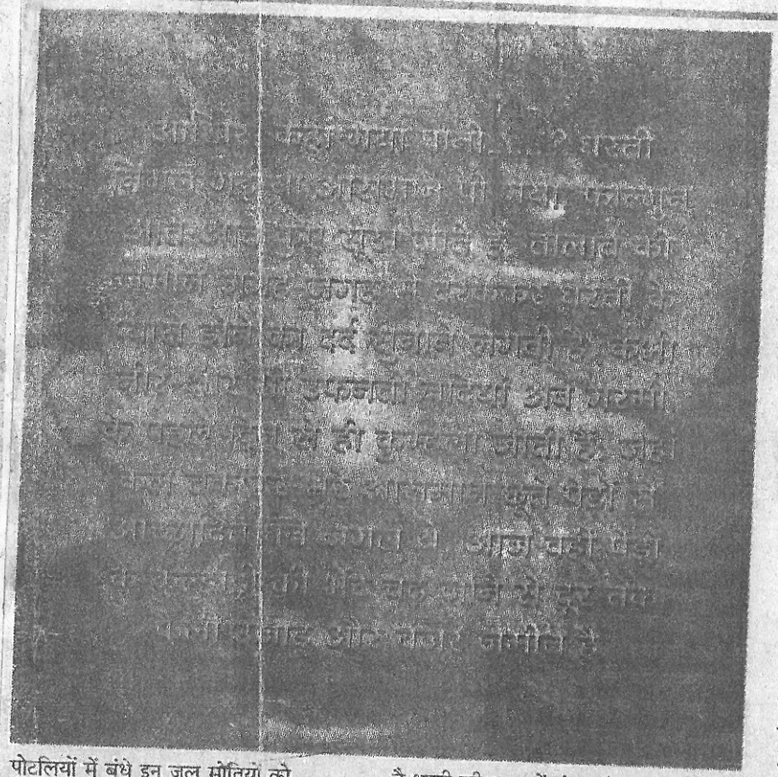

आसमान का नीला रंग फूट पड़ता धरती की कोख से और नदी बन बहने लगता किनारों की बाँहों में. कभी किसी नट-खट बच्चे सी उछलती, कूदती, उधमाती तो कभी शांत और गंभीर तो कभी बर्फ के गोलों की तरह बिखर-बिखर कर बहती नदी अपने किनारों पर संस्कृतियों की स्थापित कर आगे बढ़ जाती. सदियों से चरैवतिः चरैवतिः का संदेश देने वाली ये नदियां भी अब थकने लगी हैं. सच पूछा जाए तो ये नदियां, तालाब, कुएं, पोखर, बावड़ियां धरती के आंचल में बंधी पानी की पोटलियां ही तो हैं और शरारती आसमान एक-एक कर चुरा लेता है

पोटलियों में बंधे इन जल मोतियों को. हकीकत में यह चोरी नहीं चुहल है, धरती-आसमान के बीच ठिठौली है. कुछ समय बाद जल से रीती धरती के आंचल में आसमान उड़ेल देगा इन जल मोतियों को टप..टप..टप..टप.. आसमान की इस सौगात को छुपा लेगी धरती अपनी आंचल में. आसमान की यही सौगात जीवन है धरती पुत्रों का...... यही सौगात है संस्कृति की पोषक...... यही सौगात समर्थ है विकास का पहिया घुमाने में...... यही सौगात धरती के मटमैले रंग को पोंछकर बिखेर देती है हरियाली छटा...... निहाल हो उठती है धरती. आसमान का नीला रंग फिर से बहने लगता है धरती की चूनर में बंधा-बंधा...... भीग जाती है धरती गोद से कोख तक...... यह चक्र है धरती के रीतने और धरती के भीगने का. अनवरत् है ये चक्र सृष्टि के उदय से आज तक.

इंसान सदियों से अपनी आवश्यकता के लिए धरती के आंचल में सिमटे इन जल मोतियों को उलीचता आया है. प्रकृति को भी एतराज नहीं हुआ कभी. जीवन के लिए ही तो बांधी थी प्रकृति ने अपनी चूनर में ये पोटलियां. इंसान पानी उलीचता और आसमान फिर भर देता इन पोटलियों को. पर इंसान के लिए इतना ही काफी नहीं था. समय के साथ-साथ आवश्यकताएं भी बढ़ीं और सुविधाओं की भी दरकार हुई. आवश्यकता और सुविधा की इस दरकार ने धरती की कोख में छुपे बहुमूल्य रत्न जल बूंदों को खोज निकाला. धड़-धड़ करती मशीनों ने कुछ घंटों में ही धरती की कोख को चीर दिया और फूट पड़ी जल धारा. इंसान की खुशी का पारावार नहीं रहा. यही कहानी रही होगी पहले नलकूप की. आवश्यकता के लिये की गई यह इजाद कालांतर में फैशन बन गई. जब चाहा तब भेद दिया धरती को और निकाल लिया निर्मल जल. कब तक सह पाएगी धरती अपनी कोख का यूं तार-तार होना..... ! आपात स्थितियों में जीवन की आवश्यकता के लिए धरती की कोख में छुपा जल कब तक बचा रहेगा? कभी सौ-डेढ़ सौ फुट की गहराई में संचित जल अब चार सौ-साढ़े चार सौ और पांच सौ फुट से ज्यादा की गहराई में भी नहीं है. डग-डग रोटी, पग-पग नीर वाली उर्वरा मालव भूमि पर रेगिस्तान दबे कदमों से किसी दंतकथा के राक्षस की तरह तेजी से बढ़ता चला आ रहा है.

जहां कल तक हरे-भरे आसमान छूते पेड़ों से आच्छादित घने जंगल थे, आज वहीं पेड़ों के कुल्हाड़ी की भेंट चढ़ जाने से दूर तक फैली उजाड़ और बंजर जमीन है. मालवा ने अवृष्टि का दर्द शायद ही कभी झेला हो. यहां अतिवृष्टि जरूर कई बार हुई है. फिर भी आज कुएं, तालाब और नदियां सूख चुकी हैं. नलकूपों में जलस्तर नीचे और नीचे उतरता जा रहा है और तापमान का पारा चढ़ने के साथ ही पानी को लेकर चारों तरफ से क्रंदन सुनाई पड़ने लगता है.

जैसे पल में ही बदल गया हो पूरा परिदृश्य. अभी-अभी सब कुछ था. अभी-अभी बहुत कुछ चुक गया है. समूचे मालवा के इंद्रधनुषी केनवास में गहराने लगा है जल संकट का काला धब्बा. दिन-ब-दिन विस्तार लेते इस धब्बे ने आने वाले कल के लिए खड़ा कर दिया है जीवन के आगे एक सवालिया निशान.

-सुनील चतुर्वेदी